ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(1): 258-260
www.allresearchjournal.com
Received: 12-11-2018
Accepted: 27-12-2018

कुमारी मनीषा
शोधार्थी, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविध्यालय, मधेपुरा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
कुमारी मनीषा
शोधार्थी, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविध्यालय, मधेपुरा, बिहार, भारत

प्राचीन भारत में दलित -एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

कुमारी मनीषा

सारांश
प्रस्तुत अध्ययन प्राचीन भारतीय इतिहास में दलितों की स्थिति का विश्लेषण करता है। जिसके अंतर्गत प्रागैतिहासिक काल से आधुनिक युग तक दलित चेतना के विरुद्ध उपजे विचारों भ्रांतियों तथा कुप्रथाओं को आधार मानते हुए अध्ययन कार्य संपन्न किया गया है। शूद्रों के रूप में विकसित निम्न जातियां प्रारंभ से ही उच्च जातियों द्वारा शोषण का शिकार होती आई हैं अतः यह अध्ययन इतिहासकारों की इस विषय में समझ को विकसित करने में मदद करता है की प्राचीन भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था का सर्वाधिक नकारात्मक प्रभाव दलित वर्ग पर पड़ा है।

मूल शब्दः दलित वर्ग, ऋग्वेद, अथर्ववेद, वर्ण व्यवस्था, मौर्य काल, बौद्ध धर्म।

प्रस्तावना
दलितों के ऐतिहासिक स्वरूप को समझने हेतु आर्यों के आगमन से पूर्व की सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत हमें मानव सभ्यता एवं संस्कृति के विकास पर दृष्टिपात करना होगा। सरस्वती नदी के प्रवाह के प्राचीन उल्लेख तथा सिंधु घाटी सभ्यता की खुदाई से मिले साक्ष्य इस बात की पुष्टि करते हैं। दलित से अभिप्राय ऐसे व्यक्ति या जाति या समुदाय से है जो धार्मिक आर्थिक सामाजिक, राजनीतिक अर्थात सभी क्षेत्रों में उपेक्षित और दबा हुआ है । दलित शब्द का चलन बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में यानी 1919 में मोंटेयू चेम्सफोर्ड अधिनियम के अंतर्गत प्रथम बार हुआ। वर्तमान में दलित शब्द का प्रयोग शूद्र अति शूद्र, चांडाल, मेहतर, आदिवासी आदि अछूत समझी जाने वाली जातियों के लिए किया जाता है। दलित वर्ग के अंतर्गत गिनी जाने वाली जातियों का निर्धारण ब्रिटिश सरकार द्वारा एक निश्चित मापदंड के अनुसार किया गया और यह कहा गया कि दलित वर्ग में ऐसी जातियां हैं जिनके शारीरिक स्पर्श से पवित्र हिंदू जातियां अपवित्र हो जाती हैं। दलितों को दाब कर रखने वाली जाति प्रथा पुरातन एवं बेहद जटिल संस्था है इसके अतिरिक्त यह एक बहुआयामी परिणामों वाली व्यवस्था भी है जाति व्यवस्था के कठोर स्वरूप को ना सिर्फ हिंदू धर्म शास्त्रों में देखा जा सकता है बल्कि उनसे सामाजिक व्यवस्था से अंतर संबंधों के विभिन्न स्तरों पर जगन ने क्रूर प्रणाली के रूप में अनुभव किया जा सकता है । जाति प्रथा नहीं अंतरजातीय विवाह संस्था को प्रतिबंधित किया इसी से अस्पृश्यता का जन्म हुआ जिसके परिणाम स्वरूप अस्पृश्य के सामाजिक तथा आर्थिक आधार छीनकर उन्हेंदलित सामाजिक व्यवस्था में निसहायबना दिया गया।
वर्ण व्यवस्था और उसके परिणाम स्वरूप छुआछूत की प्रथा भारत की एक अनोखी सामाजिक वास्तविकता है जिसकी जटिलता आसानी से समझ में नहीं आती वर्ण व्यवस्था की जड़े अतीत के अंधकार में कहीं छुपी हैं। अलगाव तथा अस्पृश्यता भारतीय संस्कृति में रच बस गए हैं। दलितों के साथ इरादतन भेदभाव किया जाता है और उन्हें नई एवं उभर रही सुविधाओं संसाधनों एवं अवसरों से वंचित

रखा जाता है। दलितों की सम्मानजनक देशों में जाने की कोशिश विदाई और प्रक्रिया संबंधी बाधाएं उत्पन्न होती हैं और उनकी हिंसक प्रतिक्रिया भी होती है।

अध्ययन उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य प्राचीन भारतीय इतिहास में दलितों की स्थिति का वास्तविक मूल्यांकन करना है। जिसके अंतर्गत वैदिक कालीन सभ्यता और से लेकर आधुनिक भारतीय समाज तक के संपूर्ण कालक्रम में दलितों से संबंधित मुख्य बातों को आधार बनाया गया है।

विश्लेषणात्मक व्याख्या

प्राचीन काल में वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत लगभग सभी वर्णों के अधिकार तथा कर्तव्य किए गए थे।जबकि प्रारंभ में यह व्यवस्था गुण तथा कर्म पर आधारित थी परंतु आगे चलकर यह जन्म पर आधारित हो गई जिसका विकृत रूप जाति व्यवस्था के रूप में विकसित हुआ जिसके परिणाम स्वरूप जातियों से असंख्य उप जातियों की उत्पत्ति होती चली गई।

डॉक्टर अंबेडकर ने भी उन जातियों को डिप्रेस्ड क्लास जातियां माना है जो अपवित्रकारी होती हैं। इनमें निम्न श्रेणी के कारीगर, धोबी, डोमारी, ढोला डफ़ली बजाने वाले आदि आते हैं।

भारत में हिंदू समाज वैदिक काल में चार वर्णों में बटा हुआ था जिनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्णों का स्थान आता है।

शूद्रों के अंतर्गत सैकड़ों उपजातियां बन गई जिसमें से कुछ जातियों को हेय अथवा नीच समझा गया और अस्पृश्य या अछूत समझा गया।

प्राचीन काल में विशेष रूप से गुप्त काल में शूद्रों की स्थिति बेहद चिंताजनक थी। मध्य काल में भी अंत्यज कहीं जाने वाली इन जातियों की स्थिति दयनीय थी। इसके पश्चात भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के आगमन अथवा ब्रिटिश साम्राज्य के भारत में उदय के पश्चात भी यह स्थिति वैसी ही बनी रही।

प्राचीन कालीन समाज में दलित वर्ग की स्थिति का ऐतिहासिक महत्व रहा है प्रथम ईशा के चार 5000 वर्ष पूर्व सुदूर उत्तर से किन्हीं देवी आपदाओं के कारण एक बड़ा जाति समूह पहले ईरान आया बाद में यहां से वह दो समूहों में बट गया जिसमें से एक समूह यूरोप की तरफ तथा दूसरा समूह हूं अफगानिस्तान होकर पाकिस्तान और पंजाब क्षेत्र में आ गया। कई हजार वर्ष पूर्व ईशा के भारत में आर्यों का प्रवेश हुआ इस समय भारत के क्षेत्र को सिंधु घाटी के नाम से जाना जाता था एवं बाहर से आने वाले आर्य कहलाते थे और यहां के मूल निवासियों को अनार्य असुर दस्यु या राक्षस आदि नामों से जाना गया। दोनों समूहों के मध्य संघर्ष के परिणाम स्वरूप आर्य विजई हुए जिन्होंने अनार्य की मूल सभ्यता को नष्ट कर दिया। अपनी पराजय के परिणाम स्वरूप अनार्य संघर्ष के कारण भारत के दक्षिण में चले गए जो बाद में आदिवासी या जनजातीय लोग कहलाए इन्होंने आर्यों की अधीनता स्वीकार नहीं की। जबकि दूसरा वर्ग गुलाम बनाए जाने के उपरांत आर्यों को अपनी पूर्व कालीन व्यवस्था को परिवर्तित करने के लिए तैयार हो गए।

ऋग्वेद के दसवें मंडल पुरुष सूक्त में पहली बार उल्लेख किया गया है कि ईश्वर ने आदि पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जांघों से वैश्य और चरणों से शूद्र को जन्म दिया जो इस बात की पुष्टि करता है कि वर्ग अथवा जाति व्यवस्था का स्वरूप ऋग्वेद के निर्माण के अंतिम समय में प्रारंभ हो चुका था पहले समाज में केवल 2 समूहों आर्य और अनार्य ही मौजूद थे।

उत्तर वैदिक काल आते आते पूर्व प्रचलित वर्ण व्यवस्था अत्यधिक प्रभावी हो चुकी थी जिस कारण अथर्ववेद में वैश्य शूद्र और आर्य का उल्लेख सामाजिक विभाग के रूप में मिलता है। ब्राह्मणों और राजन्यो ने श्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर लिया था और जनसाधारण आर्य जो कृषि पशुपालन और अन्य व्यवस्थाओं में लगे हुए थे उन्हें विषु कहा गया। अतः समाज में धीरे धीरे जाति प्रथा एक श्रृंखला के रूप में जटिल होती गई जिसमें ऊंच नीच तथा छुआछूत की भावना बढ़ने लगी जिसके परिणाम स्वरूप निम्न जाति के लोगों पर अत्याचार होने के कारण उनकी स्थिति बेहद चिंताजनक होती गई।

शूद्रों को शिक्षा ग्रहण करने की अनुमति नहीं थी और ना ही वह ईश्वर की आराधना कर सकते थे अर्थात उन्हें वेद मंत्र आदि बोलने एवं सुनने का कोई अधिकार समाज में नहीं था और ना ही उच्च जाति के लोगों की जल स्रोतों से पानी पीने का अधिकार था। यदि कोई भूलवश इनमें से कोई भी कार्य कर लेता है तो उसे कठोर दंड का भागी बनना पड़ता था इसके अतिरिक्त उसे गांव से दूर बहार झोपड़ी बनाकर रहना पड़ता था।

प्राचीन काल में दलित वर्ग के पास आय का स्रोत लगभग नगण्य था इसी कारण दास प्रथा अथवा दासता का शिकार दलितों को बनाया जाता था।

इसी प्रकार अगर प्राचीन कालीन जाति व्यवस्था की तुलना वर्तमान परिप्रेक्ष्य से की जाए तो यह निष्कर्ष निकलता है कि समाज में व्याप्त प्राचीन जाति व्यवस्था के फल स्वरुप निम्न वर्ग के लोग एवं शोषित वर्ग के लोग जिन्होंने अन्य उच्च वर्गों के अत्याचारों को सहन किया वह अपने आप को दलित कहने लगे क्योंकि दलित का आशय कदापि यह नहीं कि वह इन नीच कुल का व्यक्ति है बल्कि दलित का आशय दलन किया हुआ है।

दलित वर्ग का आर्थिक तथा सामाजिक रुप से कमजोर होने के कारण समाज की उच्च जातियों के द्वारा इस कदम उठाया जाता था। पुरुष तथा महिलाओं द्वारा दिन भर काम कराया जाता था तब जाकर उन्हें एक वक्त का भोजन की व्यवस्था मिलती थी इसके स्थान पर कभी-कभी इन्हीं यातनाएं भी नसीब होती थी।

प्राचीन इतिहास का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि रिग वैदिक लोगों का धर्म बेहद सरल तथा प्रकृति प्रेमी था परंतु शूद्रों को

ईश्वर आराधना करने संबंधी स्वतंत्र अधिकार प्राप्त नहीं थे उनका मंदिरों में प्रवेश वर्जित था और ना ही उन्हें वेद एवं मंत्र पढ़ने की अनुमति थी किंतु भारत में जैन एवं बौद्ध धर्म के आने के पश्चात इनकी धार्मिक जीवन शैली में परिवर्तन आया। बौद्ध धर्म के उदय के साथ-साथ स्वतंत्रता क्षमता तथा भ्रातृत्व की भावना का सम्मिश्रण देखने को मिला बौद्ध काल में दलित वर्गों को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त हो चुकी थी जिसके फलस्वरूप वर्ग विभेद एवं छुआछूत से पीड़ित लोग भी अब शिक्षा ग्रहण कर समाज में प्रसिद्ध हो रहे थे।

प्राचीन भारतीय जातिवादी व्यवस्था दलित समुदायों को निम्न और गर्हित स्थिति में बनाए रखने का आकर्षण बनी हुई है इससे वे सामाजिक अलगाव आर्थिक शोषण और राजनीतिक पिछड़ेपन के शिकार होते रहे हैं मंदिरों में प्रवेश पर रोक जल स्रोतों को लेकर भेदभाव निम्न स्तरीय काम कराने को मजबूर शौचालय की सफाई देवदासी प्रथा जैसी पुरानी प्रथाएं जानबूझकर कायम रखी गई हैं ।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण कर यह कहा जा सकता है कि शूद्रों के रूप में उदित आधुनिक दलितों के नाम से प्रचलित वर्गों का शोषण सदा से ही होता आया है। प्रायः प्राचीन हिंदू समाज की उच्च जातियों द्वारा निम्न जातियों का शोषण किया जाता रहा है। आते हैं दलित समुदायों की मांग है कि अस्पृश्यता और जाति आधारित भेदभाव समाप्त किए जाएं तथा सरकार एवं दलितों तथा दलितों एवं गैर दलितों के बीच अच्छे संबंध आजादी और बाधा रहित विकास का आधार न्याय समानता स्वतंत्रता और भाईचारा होना चाहिए जिनका संविधान में भरोसा दिलाया गया है।

संदर्भ

1. **एल पी शर्मा, प्राचीन भारत का इतिहास एस चंद एंड कंपनी लिमिटेड राम नगर नई दिल्ली**
2. **माता प्रसाद भारत में दलित जागरण और उसके अग्रदूत सम्यक प्रकाशन** 2010
3. **छुआछूत से जंग, छुआछूत पर भारतीय जन न्यायाधिकरण,** 12 **-**13 **मई** 2007
4. **सूर्यकान्त बली, भारत का दलित विमर्श, प्रभात प्रकाशन**
5. **प्रमोद के, हिंदी दलित साहित्य का विकास, वाणी प्रकाशन,** 2016